नारी अस्मिता से आशय

स्त्री अस्मिता का प्रश्न वर्तमान चिन्तन का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। जिसने हाशिये पर धकेल दी गई स्त्री को उठाकर केन्द्र में स्थापित कर दिया है। स्त्री अस्मिता का यह प्रश्न स्त्री की अस्मिता और उसके जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं पर टिका है जो परिवार, समाज, धर्म, राजनीति, राष्ट्र, संस्कृति, अर्थव्यवस्था आदि की सम्पूर्ण परिसीमाओं के पुनर्निर्धारण की माँग करता है। परिसीमाओं का यह निर्धारण स्त्री की अस्मिता का विकास माना जा रहा है जो उसकी अपनी सामाजिक-राजनीतिक सच्चाईयों से गुजरे बिना संभव नहीं है।

बीसवीं सदी के अंत में स्त्री अस्मिता का मुद्दा अपने चरम पर दिखाई देता है। स्त्री को आधी आबादी की संज्ञा दे दिये जाने के बावजूद भी उसके अधिकार वास्तव में उसकी समानता को छू नहीं पाये हैं। स्त्री की अस्मिता और उसके मानवीय अधिकार समाज में उसे मनुष्य की अवधारणा के रूप में स्थापित करते हैं। लेकिन समाज में रूढ़ समस्याओं एवं स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति के कारण स्त्री को आज भी मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता।

अलग-अलग तरीके से समाज में उसे अपनी भूमिकाओं के लिए तैयार किया जाता है। ''औरत की मौजूदा अधीनता, अपरिवर्तनीय जैविक असमानताओं से नहीं पैदा होती हैं बल्कि यह ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं

और संस्थाओं की देन हैं जो महिलाओं की वैचारिक तथा भौतिक अधीनता को सुनिश्चित करती हैं। इसलिए नारीवादी विचारक लिंग-भेद आधारित काम, यानी लिंग के आधार पर श्रम विभाजन और उससे भी ज्यादा आधारभूत स्तर पर, यौनिकता और प्रजनन के प्रश्न को एक ऐसे विषय के रूप में देखते हैं जिसे 'जैविक संरचना' जो प्राकृतिक और इसलिए अपरिवर्तनीय मानी जाती है कि दायरे से बाहर रखकर देखा जाना चाहिए।''[1] दरअसल किसी शिशु को पैदा होते समय यह नहीं पता होता के वह नारी है या पुरुष। जैविक रूप से शिशु के स्त्री अंग को लेकर पैदा होने के साथ समाज बिन्दी लगाकर, चोटी बाँधकर, घर की चौखट लांघने पर पाबन्दी लगाकर एवं रसोई बनाना सिखाकर लिंग की कृत्रिम धारणा और विभाजक रेखा खींच देता है।

स्त्रियों का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। पितृसत्ता अगर स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रखने के लिए तमाम तरह के बंधनों में जकड़ देने का नाम है तो स्त्री-अस्मिता उन बंधनों से मुक्त होने के लिए विद्रोह करने और स्त्री-पुरुष की समानता के लिए संघर्ष करने का नाम है।

स्त्रियों ने कभी कुप्रथाओं और रूढ़ियों से मुक्ति के लिए संघर्ष किया है तो कभी राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में सहगामी की भूमिका भी निभाई है। आशारानी व्होरा ने इस संदर्भ में लिखा है कि ''हमारे यहाँ मुक्ति का अर्थ पश्चिम के अर्थ में पुरुषों की सत्ता से मुक्ति कभी नहीं रहा। राज्य व देश की स्वतंत्रता का प्रश्न जब-जब सामने आया, पुरुषों की अनुपस्थिति में स्वयं सिर पर

---

1 नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे; साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, पृ. 10.

जिम्मेदारी से शत्रुओं को ललकारने में महिलाएँ पीछे नहीं हटी।''[1] इस तरह स्त्रियों का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष कभी जागरण का पर्याय रहा है तो कभी प्रगति और विद्रोह का बिगुल बजाने वाला मंत्र। आज हम देख रहे हैं कि अनेक सामाजिक व राजनीतिक संगठन स्त्रियों के अनछुए पहलुओं को लेकर चर्चाएँ करने लगे हैं, जिससे स्त्री का पुरुष और समाज के साथ संबंध नए सिरे से परिभाषित होने लगा है।

भारतीय ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लोपामुद्रा, अपाला, घोषा, गार्गी, मैत्रयी, सूर्या, देवयानी, शची, शाश्वती, श्रद्धा, कामायनी आदि स्त्रियों का विद्वत्तापूर्ण दार्शनिक-आध्यात्मिक चिंतन भारतीय नारी के लिए अपार संभावनाओं से युक्त रहा है। प्रागैतिहासिक काल में स्त्री के लिए अनुकूल स्थितियों को बताते हुए राजशेखर ने लिखा है कि उस काल में ''पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं, ज्ञान का संस्कार आत्मा से संबंध रखता है, उसमें स्त्री या पुरुष का भेद नहीं है।''[2] नाट्यशास्त्र में भारतीय समाज में नारी की मंचीय उपस्थिति को अनिवार्य माना गया है। ऋग्वेद के यम-यमी संवादंश के विषय में प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर का मानना है कि ''यम-यमी संवाद-अंश यह संवाद नाटक के जन्म की दृष्टि से तो अपना महत्व रखता ही है, लेकिन उससे भी ज्यादा साहित्य में और वह भी नाट्य-साहित्य में नारी-विमर्श का जबरदस्त सूचक है।''[3]

बौद्ध काल में बौद्ध भिक्खुनियों ने 'थेरी गाथाएँ' लिखी। थेरीगाथाओं में

---

1 भारतीय नारी दशा और दिशा, डॉ. आशारानी व्होरा, पृ. 10.

2 काव्यमीमांसा-राजशेखर, पृ. अध्याय-10.

3 भारतीय रंगमंच में नारी-विमर्श : देवेन्द्र राज अंकुर, वसुधा-पत्रिका, अंक 59-60, पृ. 457.

नारी की दशा के ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिए उमा चक्रवर्ती का मत दृष्टव्य है - ''वृद्ध बौद्ध भिक्षु 'थेर' (स्थविर) कहलाते थे और वृद्धा बौद्ध भिक्खुनियाँ 'थेरी' (स्थविराएँ) कहलाती थीं। इन वृद्धाओं ने सामाजिक बन्धनों से अपनी मुक्ति के तथा स्त्री-पुरुष की समानता के जो गीत गाये, वे 'थेरीगाथा' कहलाते हैं, क्योंकि उनके इन गीतों को गाने वाली स्त्रियों के आध्यात्मिक अनुभवों के साथ-साथ उनके जीवन की संक्षिप्त कहानियाँ कही गयी हैं। उन कहानियों से तत्कालीन समाज की और उस समय में स्त्री-पुरुष संबंधों की कुछ झलक मिलती है। ..... ये रचनाएँ स्त्रियों के अपने लेखन तथा अपने बारे में किये गये लेखन के सबसे प्राचीन प्रमाण हैं। इससे पता चलता है कि स्त्रियों का आध्यात्मिक अनुभव पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभव से भिन्न नहीं है। जैसे पुरुष अपनी मुक्ति या निर्वाण के बारे में सोचते हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी सोचती हैं।''[1] ऐसा नहीं है कि बौद्ध काल में पुरुष की तुलना में नारी को समानता का दर्जा प्राप्त हो गया था। शिक्षा के अधिकार ने समाज में नारी भिक्षुणियों को अपनी उपस्थिति को पुनर्परिभाषित करने का एक अवसर प्रदान किया। जिससे यह युग नारी उत्थान के लिए आगे आने वाले समय के लिए प्रेरणास्रोत अवश्य रहा।

प्राकृत काल आते-आते समाज के नीति-निर्धारकों ने स्त्रियों पर रूढ़ियों और अंधविश्वासों का शिकंजा कसना शुरू कर दिया जिससे उसकी स्थिति में तेजी से गिरावट आने लगी। नारी की स्थिति में यह गिरावट हर्षवर्द्धन से लेकर पृथ्वीराज तक के काल और तत्पश्चात् शक, चोल आदि के आगमन के बाद उत्तरोत्तर अवनतिपरक होती गई। हिन्दी साहित्य के आदिकाल तक आते-आते

---

1 आज का स्त्री आन्दोलन, सं. रमेश उपाध्याय, पृ. 9-10.

नारी की स्थिति केवल श्रृंगार का पर्याय बनकर रह गयी। आदिकाल में बाह्य आक्रमणकारियों के भय और अनादर के कारण कन्याओं का जन्म अशुभ माना जाता था। इसीलिए उन्हें पैदा होते ही मार भी दिया जाता था। शिक्षा के अभाव ने लोगों को ज्ञानहीन बना दिया जिसके कारण अनेक अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों का जन्म हुआ। समाज में पर्दा-प्रथा ने स्त्रियों को बाहरी दुनिया से अलग कर दिया था। स्त्री को भोग्या की दृष्टि से देखा जाने लगा और वह केवल पुरुषों की धन-सम्पत्ति समझी गयी। स्त्रियों का बलात् अपहरण, सुन्दर कन्याओं (राजकुमारियों) के लिए युद्ध इस समय की आम बात थी। सामन्त और राजा एक से अधिक पत्नीयाँ रखते थे। भोग-विलास इस काल के सामन्ती जीवन का मुख्य शगल रहा। नारी मात्र विलासिनी ओर पुरुष की शारीरिक संतुष्टि का साधन समझी जाने लगी थी। इस प्रकार इस काल में नारी की स्थिति, उसका सम्मान व उसकी अस्मिता को पुरुष वर्ग ने कोई विशेष महत्व नहीं दिया।

मध्यकालीन समाज में स्त्री पूर्ण रूप से पुरुष के ऊपर आश्रित थी, जिसका सर्वोच्च कर्त्तव्य था अपने पति की सेवा और इच्छा की पूर्त्ति करना। मध्यकाल नारी स्थिति की दृष्टि से चिर-पराधीनता का काल भी माना जा सकता है, जहाँ संतों ने उसे 'ढोर, गंवार, शूद्र, पशु, नारी सकल ताड़न के अधिकारी' या 'महा ठगिनी' आदि उपाधियों से विभूषित किया। उसे ईश्वर की प्राप्ति में बाधा माना गया। उससे दूर रहने और उसका त्याग करने की बात कही गयी। मोहिनी, ठगिनी, नागिन, माया आदि नाम देकर उसका बहिष्कार किया गया। इस तरह सामाजिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में सम्मान न होने के कारण परिवार में उसका आदरणीय स्थान नहीं रह गया था। सामन्तों और अमीरों की विलासोन्मुख वृत्ति के

लिए नारी केवल भोग-विलास का साधन थी, जिसका जीवन घर की चौहद्दियों के भीतर समेट दिया गया।

हालांकि सूरदास रचित 'सूरसागर' के 'भ्रमरगीत सार' में गोपियों की मुखरता और उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति के माध्यम से नारी अस्मिता के चिह्न दिखाई देते हैं। 'देहवाद को चुनौती' देते हुए मीरा अपनी स्वतंत्रता का शंखनाद करती है और नारी के प्रति सदियों से चली आ रही झूठी मान-मर्यादा की परवाह न करते हुए खुद को 'अबला बौरानी' मानती है -

''लोक लाज कुल मानि जगत की
ददू बहाय जस पानी
अपने घर का परदा कर ले
मैं अबला बौरानी।''[1]

मीराबाई अपने अप्रतिम साहस और अभिव्यक्ति की अदम्य क्षमता से मध्यकालीन धर्म और समाज को खुली चुनौती देती है। मैनेजर पाण्डेय ने इस संबंध में लिखा है - ''मीरा ने उस आतंककारी लोक और उसके भयावह धर्म के विरुद्ध खुला विद्रोह किया। उनकी कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निवेश और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है।'' इस तरह मध्यकाल में मीरा, रामो, सहजोबाई सामाजिक जीवन में और नूरजहाँ, मुमताज, रजिया सुल्तान राजनीतिक क्षेत्र में नारी के प्रति होती उपेक्षा के प्रति अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता का परिचय देती है और पुरुष प्रभुत्व के लिए चुनौती बनकर सामने

---

1 मीराबाई की पदावली; परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 76.

आती है।

आधुनिक काल की शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी से मानी जाती है। उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में नवजागरण की लहर के साथ स्त्री से जुड़े प्रश्नों पर गंभीरता से विचार किया जाने लगा था। स्त्री-जीवन की समस्याओं, कुप्रथाओं, सती-प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह पर खुल कर प्रहार हुए। राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महात्मा गाँधी, ज्योतिबा फुले सरीखे समाज सुधारकों ने स्त्री शिक्षा एवं जागरण के अनेक कार्य किये। विधवा पुनर्विवाह, विधवाओं की जीवन दशा सुधारने एवं औरतों में व्यवसाय के प्रसार-प्रचार हेतु कार्य किये गये। सावित्री फुले, पण्डिता रमाबाई, फ्रान्सिना सोराबजी, रमाबाई पाण्डे, सरोजनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित और एनी बेसेंट आदि महिलाओं ने नारी अस्मिता की स्वतंत्र एवं प्रतिनिधि आवाज बनकर उसकी अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को दशा और दिशा प्रदान की।

स्वतंत्रता संग्राम का राष्ट्रीय आंदोलन नारी अस्मिता के विकास का माध्यम बनकर आया। महिलाओं ने इसमें सक्रिय भूमिका निभाते हुए बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। राष्ट्रीय आन्दोलनों में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी की चर्चा करते हुए आशारानी व्होरा ने लिखा है - ''नारी जागरण का प्रश्न हो या नारी अधिकारों का या राष्ट्रीय कार्यों में नारी की भागीदारी का, पुरुषों ने आगे बढ़कर उसका आह्वान किया और दोनों कंधे से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई व समाज-सुधार के कार्यों में भाग लेते रहे।''[1] इस तरह आजादी की लड़ाई में स्त्री-चेतना का एक भव्य रूप हमारे सामने आता है जिसमें वह चारदीवारी की

---

1 नारी शोषण - आइने और आयाम; आशारानी व्होरा, पृ. 249.

लक्ष्मण रेखाएँ लाँघते हुए पुरुषों के साथ संघर्ष में शामिल होती है और अपने सामर्थ्य का भरपूर परिचय देती है।

स्वतंत्र भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों के रूप में स्त्री-पुरुष पूर्ण समानता का कानून बना। उत्तराधिकार अधिनियम-1956 के तहत लड़की को लड़के के समान 'सहउत्तराधिकारी' माना गया। संविधान में स्त्रियों को 'मताधिकार' प्रदान किया, साथ ही विवाह अधिनियम 1955 में विशेष आधारों पर तलाक की अनुमति दी गई। बहुविवाह पर रोक लगाई गई। अनुच्छेद 39-51 में स्त्री-पुरुष के 'समान कार्य-समान वेतन' का अधिकार दिया गया। व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश से स्त्री को आर्थिक स्वतंत्रता मिली। आर्थिक स्वतंत्रता ने उसे 'देवी' या 'दानवी' के परम्परागत रूप से निकालकर 'मानवी' का रूप दिया।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1975 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया था। इससे स्त्री अस्मिता से जुड़े मुद्दों को नया आयाम मिला। महिलाओं के जीवन से जुड़े अनेक पहलुओं पर चर्चा हुई और एक नई सोच का जन्म हुआ। वर्तमान में स्त्री के प्रति बदलते नजरिये को रेखांकित करते हुए प्रभा खेतान लिखती है - ''आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है उसकी नियति में बदलाव है उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन-मिजाज सभी तो बदल रहा है।''[1]

अब महिलाओं के लिए समुचित विकास एवं सशक्तिकरण का वातावरण बनता जा रहा है। महिलाएँ पुरुषों के साथ हर क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर

---

1 उपनिवेश में स्त्री; प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ.53.

अपनी उपस्थिति व अस्मिता का अहसास करा रही हैं। अब वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई है। अब नारी ने अपने अस्तित्व और अस्मिता को पहचानते हुए परम्परागत रूढ़ ढाँचे को तोड़ा है। इस तरह यह आधी आबादी सकारात्मक संघर्ष के बाद विकासोन्मुख आमूल-चूल परिवर्तन के लिए उद्यत है।